Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

अनिता भारती की कहानियाँ और दलित स्त्री चेतना

कविता पासवान
शोधार्थी, भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

Article Info
Volume 4, Issue 3
Page Number : 173-177

Publication Issue :
May-June-2021

Article History
Accepted : 01 June 2021
Published : 15 June 2021

शोध सार- अनिता भारती की कहानियों में दलितों के संघर्षपूर्ण जीवन की सफल प्रस्तुति को देखा जा सकता है। उनकी कहानियों में उपस्थित दलित स्त्री पात्र सवर्णों द्वारा किये जाने वाले अत्याचार को सहती नहीं हैं बल्कि उसका साहस और हिम्मत के साथ विरोध करती हैं जो दलित स्त्रियों में आने वाली चेतना का द्योतक है। क्योंकि अब दलित स्त्रियां ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के साथ-साथ दलित पितृसत्ता को भी चुनौती दे रही हैं। वह पितृसत्ता द्वारा स्त्रियों के लिए बनाये गये बन्धनों से मुक्ति की मांग करते हुए, एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहती हैं जहाँ स्त्री-पुरुष का भेद न हो, बल्कि इंसान को केवल एक इंसान के रुप में देखा जाये। जाति, लिंग तथा आर्थिक स्थिति के कारण जिस तिहरे शोषण को दलित स्त्रियों ने सहा है उसका पूरी ताकत के साथ विरोध करते हुए लेखिका दलित स्त्रियों को हर तरह के अन्याय तथा अत्याचार के खिलाफ लड़ने के लिए खड़ा करती हैं। इतना ही नहीं अनिता भारती अपनी कहानियों में दलित स्त्रियों के साथ-साथ गैरदलित स्त्रियों के जीवन की सच्चाई को भी उजागर करती हैं।

मुख्य शब्द- अनिता भारती, कहानियाँ, दलित, स्त्री, चेतना, समाज, शोषण, उत्पीड़न, विरोध।

पिछले कुछ दशकों में दलित स्त्री चेतना बहस के केंद्र में रहा है। ऐसी बहसों में अक्सर यह सवाल उठते हैं कि दलित स्त्री चेतना क्या है ? इसके सरोकार क्या हैं ? क्या दलित स्त्री चेतना दलित चेतना से भिन्न है ? आदि। सामाजिक विषमता के खिलाफ गैर बराबरी, भेदभाव, लैंगिक शोषण, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक स्तर पर होने वाले शोषण और उत्पीड़न के विरोध में दलित स्त्रियों द्वारा अपने स्वर को बुलंद करना ही दलित स्त्री चेतना है। विषमतापरक समाज की जगह समतापरक समाज का निर्माण करना दलित स्त्री चेतना के सरोकारों में शामिल है। इसीलिए दलित चेतना से दलित स्त्री चेतना इस अर्थ में भिन्न दिखाई देती है क्योंकि इसमें दलित स्त्री के तिहरे शोषण की बात आ जाती है। दलित स्त्री चेतना ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के साथ-साथ दलित पितृसत्ता से भी मुक्ति की मांग करती है जो दलित चेतना में नहीं दिखाई देती। दलित चिंतन जहाँ केवल जातीय पहचान के आधार पर होने वाले शोषण का विरोध करता है वहीं दलित स्त्री चिंतन मूलत: जातीय पहचान एवं लैंगिक पहचानों के आधार पर होने वाले दोनों प्रकार के शोषणों का प्रतिकार करती है। दलित लेखिकाएं और दलित सामाजिक कार्यकर्त्ता अपनी चेतना का आधार बुद्ध, फुले दम्पत्ति तथा बाबासाहब अम्बेडकर के विचारों से ही ग्रहण करते हैं।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

अनिता भारती की कहानियों में अभिव्यक्त दलित स्त्री चेतना की बात करें तो उनकी कहानियों में शोषित, पीड़ित, दलित स्त्रियों की वंचनाएँ एवं तकलीफें तो हैं ही इससे भी कहीं अधिक उनमें ललकार और चुनौतियाँ हैं। ये ललकार और चुनौतियाँ उस व्यवस्था के प्रति हैं जिसने दलित स्त्रियों की गरिमा तथा आत्मसम्मान पर प्रहार करते हुए उन्हें दोहरे-तिहरे स्तर पर शोषित होने के लिए मजबूर किया है। भारतीय समाज में जाति एवं वर्ण व्यवस्था ने जिस सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया है उसके अंतर्गत सर्वाधिक पीड़ित दलित स्त्रियां ही हैं। सदियों से हो रहे दलित स्त्रियों का उत्पीड़न अभी भी समाप्त नहीं हुआ है बल्कि आज भी बदस्तूर जारी है। क्योंकि आए दिन समाचार पत्रों, रेडियो तथा टेलीविजन चैनलों में दलित स्त्रियों के साथ होने वाले अत्याचार को पढ़ा, सुना तथा देखा जा सकता है।

यह सर्वविदित है कि अन्याय करने वालों से अधिक अन्याय सहने वाला दोषी होता है। शोषण का प्रतिकार न करना भी अपराध ही होता है। अत: अनिता भारती की कहानियों में दलित स्त्रियां अपने साथ होने वाले अत्याचार को सहती नहीं है बल्कि उसका डट कर विरोध करती हैं। वे ब्राह्मणवादी जाति व्यवस्था को नकारते हुए एक नई ऊर्जा एवं प्रेरणा के साथ उन समस्त सामाजिक बुराइयों के खिलाफ खड़ी दिखाई देती हैं जो दलित स्त्रियों का शोषण व दमन करने के कारक हैं। 'एक लड़ाई की मौत' तथा 'सीधा प्रसारण' ऐसी कहानियाँ हैं जिनकी नायिकाएं अपने साथ होने वाले शोषण को सहने की बजाय उसका विरोध करती हैं। उनको इस बात का बोध है कि अपराध करने वाला व्यक्ति उतना ही गुनहगार होता है जितना कि अपराध सहने वाला। हम अपराध को जितना ही सहते हैं अपराधी के इरादे उतने ही बुलंद होते जाते हैं। इसलिए इन दोनों कहानियों की नायिकाएं अपने साथ होने वाले अन्याय को अपनी नियति नहीं मानतीं बल्कि उसका प्रतिकार करती हैं। 'एक लड़ाई की मौत' कहानी में दलित समाज की लक्खी पर गैर दलित समाज का दीपक शर्मा अपने साथियों के साथ शारीरिक संबंध बनाने का दबाव डालता है। वह महाभारत की द्रौपदी का उदाहरण देते हुए लक्खी से कहता है "द्रौपदी भी तो पाँच-पाँच को संभालती थी रानी थी रानी।"[1] दीपक शर्मा के घिनौने प्रस्ताव का एक-एक शब्द लक्खी के कानों में सूई की तरह चुभ जाती है। दीपक शर्मा की बातों को सुन लक्खी के सब्र का बांध टूट जाता है और वह उन दरिन्दों के समक्ष शेरनी की तरह गरजते हुए बोलती है "चले जाओ यहाँ से हरामजादों द्रौपदी बनाना अपनी माँ बहनों को। अगर यहाँ दुबारा आने की कोशिश की तो एक-एक को फँसवा दूंगी।"[2]

लक्खी की ललकार को सुनकर दीपक शर्मा तथा उसके साथियों का जातीय अहंकार जाग जाता है और वो दरिन्दे अपनी दरिन्दगी पर उतर आते हैं। वो चारो पहले लक्खी का बलात्कार करते हैं, उसके बाद उसे जलाकर मारने की कोशिश। बलात्कार एवं शरीर का नब्बे प्रतिशत भाग जल जाने के बावजूद लक्खी हार नहीं मानती। सवर्णों द्वारा बलात्कार की शिकार लक्खी अपने साथ घटी घटना से निराश होकर घुटने नहीं टेकती, बल्कि दोषियों को सजा दिलाने के लिए दोगुना हौसला और हिम्मत संजोती है। समाज के ताने व परिवार की बदनामी के डर से लक्खी उन आतताइयों को खुला नहीं छोड़ना चाहती क्योंकि उसे मालूम है कि अगर उन दरिन्दों को सजा नहीं मिली तो कल को, वो दूसरी स्त्रियों के साथ भी वहीं करेगें जो मेरे साथ किया। इसी तरह की घटना 'सीधा प्रसारण' कहानी में भी देखने को मिलता है जहाँ एक सवर्ण समाज का लड़का मुकेश अपने साथियों के साथ मिलकर दलित समाज की लड़की सुनीता का बलात्कार कर उसकी हत्या कर देता है। दलित समाज की सुनिता पढ़-लिखकर परिवार, समाज तथा देश के लिए कुछ करना चाहती थी। सुनीता का पढ़ना-लिखना सवर्ण समाज को पसन्द नहीं था। वह नहीं चाहते थे कि एक दलित स्त्री पढ़-लिखकर तरक्की करे। इसलिए एक दिन मौका पाकर मुकेश तथा उसके साथी विद्यालय से घर आ रही सुनिता का रास्ता रोक लेते हैं और कहते हैं कि "अरी ओ इन्दिरा गाँधी पढ़-लिखकर क्या कलेक्टर बनेगी ? अरी चमरी बहुत हो गई पढ़ाई अब जरा आकर कर ले हमसे...।"[3] मुकेश की बातों को सुनिता अनसुना नहीं करती, वह उसे अपने मान-सम्मान के खिलाफ समझती है तथा मुकेश को यह बता देना चाहती है कि

दलित स्त्रियों का मान–सम्मान इतना सस्ता नहीं है कि जिसे जो जी में आए कहकर निकल जाये। वह मुकेश तथा उसके साथियों से कहती है "हाँ बनूँगी कलेक्टर बोल तू क्या करेगा ? और अगर मैं किसी दिन कलेक्टर बन गई तो तेरे इतने डंडे लगवाऊँगी कि तू किसी लड़की से... करने लायक नहीं रहेगा।"[4] अत: हम देख सकते हैं कि दोनों कहानी की स्त्री पात्र उन दबंगों के समक्ष झुकती नहीं बल्कि उनको सजा दिलाने के लिए आखिरी दम तक लड़ती हैं। लक्खी और सुनिता के अन्दर उत्पन्न दलित स्त्री चेतना को देखकर अनायास ही निम्नलिखित कविता की पंक्ति याद आ जाती है–

"प्रज्वलन के नाम पर / पानी के छींटे मार कर,
मुझे बुझाते रहो / खुद हाथ में सेंकते रहो, कहकहे लगाते रहो।

पर अब नहीं आऊँगी, मैं झाँसे में / धूर्त बहेलियों के फाँसे में

नहीं पड़ने दूंगी खुद पर / बहकावे का पानी

भीतर की अग्नि को मैं धधकाऊँगी

खुद भी तपूँगी और तुम्हें भी तपाऊँगी।"[5]

अनिता भारती की कहानियों में दलित स्त्रियों की लड़ाई केवल ब्राह्मणवादी पितृसत्ता से ही नहीं है बल्कि दलित समाज में व्याप्त पितृसत्ता से भी है। दलित स्त्रियाँ जहाँ एक तरफ ब्राह्मणवादी विचारधारा से जूझ रही हैं तो वहीं दूसरी तरफ दलित समाज में कायम पितृसत्ता से भी। दलित समाज के लोग गैरदलित समाज के ऊपर चाहे जितना भी दोषारोपण कर लें, ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था तथा ब्राह्मणवादी विचारधारा को कितनी भी गालियाँ दे दें, किन्तु इस बात से इंकार नहीं कर सकते हैं कि दलित स्त्रियों को पितृसत्ता की दोहरी मार सहनी पड़ती है, एक तरफ ब्राह्मणवादी पितृसत्ता की तो दूसरी तरफ दलित पितृसत्ता की। अनिता भारती की कहानियों की नायिकाएं इस ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के साथ–साथ दलित समाज में विद्यमान पितृसत्ता का भी विरोध करती दिखाई देती हैं। 'सुजाता रुक मत जाना' की सुजाता तथा 'तीसरी कसम' कहानी की चंपा दलित समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर सवाल उठाते हुए इसे दलित स्त्रियों के विकास में बाधा मानती हैं। उनका मानना है कि भारतीय समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था से दलित स्त्रियों को सिर्फ जख्म ही जख्म मिले हैं राहत नहीं। लेकिन अब दलित स्त्रियाँ पितृसत्ता के इस जख्म को नहीं सहेंगी। वे समस्त सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आवाज उठायेंगी जो दलित स्त्रियों के सम्मानित जीवन और विकास मार्ग में बाधा उत्पन्न करती हैं। 'सुजाता रुक मत जाना' कहानी में सुजाता को इस असमानतावादी रुढ़िग्रस्त सामाजिक व्यवस्था के इशारों पर चलना बिल्कुल मंजूर नहीं है। इसलिए वह दलित समाज के पुरुषों से कहती है "एक बात मेरी आप सभी सुन लो आपके डराने धमकाने से मैं रुकने वाली नहीं हूँ।"[6] यहाँ सुजाता पितृसत्तात्मक व्यवस्था से तो सवाल करती ही है साथ ही स्वयं के साथी एवं रक्षक का दंभ भरने वालों से भी कहती है कि क्या तुम हमारी पीड़ा, हमारा दु:ख–दर्द समझ पाये या सदैव हमें अपने हाथ की कठपुतली ही समझते रहे ? क्या तुम्हारी नजर में हमारा कोई अस्तित्व है ? क्या हमारी इच्छाओं का, हमारी स्वतंत्रता का तुम्हारी नज़र में कोई मोल है ? क्या तुम नहीं चाहते कि तुम्हारे समाज की स्त्रियाँ पढ़–लिखकर डॉक्टर, इंजीनियर, वकील तथा अध्यापक बने ? अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए आज तक तुमने जो किया सो किया, लेकिन अब हम स्त्रियाँ तुम्हारी इच्छानुसार अपनी जिंदगी नहीं जियेंगी, हम अपने भविष्य का निर्धारण स्वयं करेंगी।

ऐसी ही 'तीसरी कसम' कहानी की नायिका चंपा अपने माता–पिता की मृत्यु के बाद अपने छोटे भाई राधे के पालन–पोषण की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेते हुए उसे एक ऐसा इंसान बनाना चाहती है जो समाज में मान–सम्मान की जिन्दगी जी सके। अत: चंपा अपने पुश्तैनी कार्य नौटंकी कला को छोड़कर खेतों में हल चलाकर राधे का पालन–पोषण करना चाहती है।

लेकिन उसकी बिरादरी के लोग उसके इस फैसले के खिलाफ खड़े हो जाते हैं और चंपा के हल चलाने के फैसले का विरोध करते हुए कहते हैं "जब घर में लड़का है तो लड़की हल क्यों चलायेगी। चंपा को वही करना चाहिए जो हमारी बिरादरी की औरतें करती हैं।"[7] वस्तुत: सुजाता और चंपा जैसी दलित स्त्रियाँ इस बात को समझ गई हैं कि यथास्थितिवादी व्यवस्था जिसमें दलित महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति गूंगी तथा परावलंबी थी, उसी व्यवस्था को पुरुष प्रधान समाज सदैव बरकरार रखना चाहता है किंतु सुजाता और चंपा जैसी जागरुक दलित स्त्रियाँ अब अपने अधिकारों की मांग कर रही हैं। वह पितृसत्तात्मक समाज से कहती हैं तुमने सदैव हमारी उपेक्षा की है अब और नहीं। परिवार और समाज में हमारा भी अस्तित्व है इस बात को अब तुम्हें स्वीकारना होगा। अपनी श्रेष्ठता और वर्चस्व कायम रखने के लिए जिन नियमों, बंधनों को तुमने बनाया उसका पालन करना हमें स्वीकार नहीं है। अब हम दलित स्त्रियाँ अपना जीवन स्वतंत्र और आत्मनिर्भर होकर जीना चाहती हैं।

अनिता भारती की कुछ कहानियों में NGO जैसी संस्थाओं तथा उससे जुड़ी दलित स्त्रियों का भी चित्रण मिलता है। 'नीला पहाड़ लाल सूरज की' कहानी की प्रज्ञा एक जुझारु समाज सेविका है जो 'दलित सरोकार' नामक संस्था से जुड़ी है। प्रज्ञा दलितों के अधिकारों की लड़ाई में हर परिस्थितियों से टकराने के लिए तैयार रहती है। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त मोटरसाइकिल बनाने वाली कंपनी द्वारा बिना किसी पूर्व सूचना के कई सौ मजदूरों की छटनी कर दिए जाने पर प्रज्ञा अपनी संस्था की तरफ से उन मजदूरों को न्याय दिलाने के लिए अनिश्चितकालीन धरने पर बैठ जाती है। प्रज्ञा की तरह 'सीधा प्रसारण' कहानी की रंजना भी दलितों तथा स्त्रियों के अधिकारों के लिए लड़ते हुए दिखाई देती है। एक स्वयंसेवी संस्था 'जनचेतना' से जुड़ने के बाद रंजना अपनी संस्था की तरफ से दलितों की हर संभव मदद करने की कोशिश करती है। यहाँ लेखिका प्रज्ञा तथा रंजना के रुप में दलित समाज की ऐसी स्त्रियों को प्रस्तुत करती हैं जिनका एकमात्र लक्ष्य शोषित, दमित दलितों को न्याय दिलाना है। ये स्त्रियाँ शहरी वातावरण से जुड़े होने के बावजूद ग्रामीण दलितों की एक-एक समस्याओं से अवगत हैं। वे दलितों की हर समस्या को अपनी समस्या समझने लगती हैं। वे बस इतना चाहती हैं कि हजारों सालों से घुटन की जिन्दगी जी रहा दलित समाज अब मुक्त होकर स्वतंत्रतापूर्वक खुली हवा में साँस ले। अनिता भारती भी अपने व्यक्तिगत जीवन में ऐसी ही कई संस्थाओं से जुड़ी रही हैं इसलिए उनकी कहानियों में भी इसका प्रभाव दिखाई देता है।

'ठाकुर का कुँआ पार्ट टू' तथा 'बीज बैंक' कहानी में भी दलित स्त्रियाँ अपने समाज का नेतृत्व करते हुए दिखाई देती हैं। 'सुपर्व बीज कंपनी' के मुफ्त बीज वितरण के जाल में फंसकर कुसिया गाँव के दलित अपना सब कुछ (जमीन से लेकर घर-बार तक) गंवा देते हैं। जैसे ही कुसिया गाँव के दलितों को कंपनी की असलियत पता चलती है वैसे ही वह उस समस्या से निजात पाने का रास्ता ढूँढ़ने लगते हैं। अन्त में गाँव वालों की सहमति से एक 'बीज बैंक समिति' का निर्माण किया जाता है और उस समिति के संचालन की जिम्मेदारी दलित स्त्रियों के हाथों में सौंपी जाती है- "मुझे यह लगता है कि इसकी कार्यकारिणी को हमारे गाँव की बहू-बेटियाँ ही संभाले।"[8] अत: 'ठाकुर का कुँआ पार्ट टू' कहानी में दलित स्त्रियाँ स्वयं आगे बढ़कर अपने समाज का नेतृत्व करती हैं लेकिन 'बीज बैंक' कहानी में पुरुषों द्वारा दलित स्त्रियों के हाथ में नेतृत्व की बागडोर सौंपना एक नई सोच को उजागर करता है। दलित स्त्रियों में चेतना जगाने तथा उनको विकास के पथ पर आगे बढ़ाने के लिए जो कार्य बाबासाहब अम्बेडकर ने किया था उसी का प्रभाव कुसिया गाँव के दलित पुरुषों पर दिखाई देता है।

'एक थी कोटेवाली' कहानी में लेखिका, दलित समाज के प्रति सवर्णों की जातीय मानसिकता को उजागर करती हुई जाति के आधार पर दलितों को अपमानित करना तथा उनकी प्रतिभा और कार्यक्षमता पर सवाल उठाना जैसे सवर्णों की आदत में शुमार है। 'एक थी कोटेवाली' कहानी की गीता इसलिए पढ़-लिखकर शिक्षक बनने का रास्ता चुनती है कि कम से कम शिक्षा के क्षेत्र में तो जाति-पांति नामक गंदगी नहीं होगी। लेकिन विद्यालय के पहले दिन ही गीता का भ्रम टूट जाता है

क्योंकि शिक्षा के क्षेत्र में भी जाति का दानव पैर पसारे बैठा है। विद्यालय की हर अध्यापिका गीता से उसकी जाति जानना चाहती हैं ताकि उन्हें यह पता चल सके कि गीता कोटेवाली है या बिना कोटेवाली। विद्यालय की गैर-दलित शिक्षिकाओं को जैसे ही गीता के बारे में पता चलता है। वैसे ही वह बोल उठती हैं "अरे ये तो मायावती निकली... जहाँ देखो वहीं कोटेवाली। पूरे देश का सत्यानाश करके रख दिया है... अब हमारे बच्चों का क्या होगा।"[9] यहाँ लेखिका उस असलियत को उजागर करती हैं जहाँ जाति के आधार पर दलितों के ऊपर अयोग्यता की मुहर लगा दी जाती है। दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.एस.सी प्रथम श्रेणी तथा जामिया से बी.एड. की डिग्री धारण करने वाली गीता गैर-दलित शिक्षिकाओं की नज़र में इसलिए अयोग्य है क्योंकि वह दलित वर्ग से है।

अनिता भारती की कहानियों में चित्रित अधिकांशत: दलित स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति जागरुक दिखाई देती है। वह भारतीय सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन की माँग करते हुए एक ऐसे समाज की कल्पना करती हैं जहाँ दलितों तथा स्त्रियों को स्वतंत्र होकर जीने का अधिकार हो। दलित स्त्रियों को अपने अधिकारों के प्रति जागरुक दिखाकर लेखिका प्रगतिशील सोच का परिचय देती हैं। दलित स्त्रियों के प्रति लोगों के मन में जो छवि बनी हुई है वह अनिता भारती की कहानियों में टूटती है। क्योंकि इनकी कहानियों में गरीब, अनपढ़, हताश, निराश दलित स्त्रियों की जगह आत्मनिर्भर, शिक्षित, साहसी तथा जागरुक दलित स्त्रियाँ नज़र आती हैं। बुध्द, फुले तथा डॉ. अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित दलित स्त्रियाँ अपने समाज को सभी तरह के अधिकार दिलाना चाहती हैं। वे किसी भी तरह के अन्याय को सहन नहीं करती, बल्कि उसका विरोध करती हैं। शिक्षा के प्रति जागरुक दलित स्त्रियाँ जातिमुक्त सामाजिक व्यवस्था की भावना से युक्त हैं। इसलिए स्वयं की शिक्षा के साथ-साथ समाज के अन्य लोगों के अन्दर भी शिक्षा की ज्योति जला रही हैं और उन्हें आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित कर रही हैं। वस्तुत: स्त्री विमर्श या दलित स्त्री विमर्श को, भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा, स्त्री पराधीनता, स्त्री अशिक्षा इत्यादि जैसी अनेक कुप्रथाएं जो अभी भी समाज में व्याप्त हैं, का हल ढूंढ़ना शेष है। इसलिए स्त्री विमर्श या दलित स्त्री विमर्श की दिशा इन्हीं चुनौतियों से निपटने में होनी चाहिए।

संदर्भ – ग्रंथ:-

1. अनिता भारती, *एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियाँ,* लोकमित्र प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 28
2. वही, पृ. 28
3. वही, पृ. 59
4. वही, पृ. 59
5. सं. संजीव चंदन, *स्त्रीकाल, स्त्री का समय और सच,* पत्रिका, अंक-9, सितम्बर-2013, नई दिल्ली, पृ. 111
6. अनिता भारती, *एक थी कोटेवाली तथा अन्य कहानियाँ,* लोकमित्र प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012,पृ. 54
7. वही, पृ.34
8. वही, पृ. 94
9. वही, पृ. 47